IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भक्ति की अवधारणा और भक्ति आंदोलन के पूर्व भक्त संप्रदाय।

हर्ष
शोधार्थी
(हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)

सारांश:- यह अनुसंधान हिन्दू धर्म ग्रंथों में "भक्ति" के विविध पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करता है, जिसे विभिन्न भावनाओं को संवहन करने का उपक्रम समझा जाता है, क्योंकि हिन्दू धर्म में 'भक्ति' एक वृहद अवधारणा है। जिसका विकास भागवत काल से निरंतर चलता आ रहा है। दक्षिण में भक्ति आंदोलन आरंभ होने से पूर्व भी कई भक्ति समुदाय और संप्रदाय ऐसे थे, जो वेदों-उपनिषदों से भक्ति के सूत्र ग्रहण कर आगमों के माध्यम से भगवान की भक्ति में लीन हो रहे थे।

बीज शब्द:- हिन्दू, भक्ति, श्रद्धा, आराधना, नवधा भक्ति , वैदिक युग, भक्ति आंदोलन, आगम, सात्वत मत, पंचरात्र मत, वैखानस मत।

हिन्दू संस्कृति में 'भक्ति' शब्द बहुत व्यापक भाव-बोध का वाहक है, जिसका विश्लेषण भाषा वैज्ञानिक या शास्त्रीय आधार से करना उसके मूल स्वरूप को समझने में बाधा उत्पन्न करने जैसा होता है। यही कारण है की जब विद्वानों का समूह 'भक्ति' को एक शब्द के रूप में समझने और हिन्दू संस्कृति के बृहद इतिहास में उसके शाब्दिक अर्थ रूप को खोजने की कोशिश करता है, तो खुद को भ्रामक परिस्थिति में पता है। जिसका कारण है की हिन्दू धर्म में 'भक्ति' कोई पृथक अवधारणा नहीं है, बल्कि यह हिन्दू धर्म का मूल है, उसका पूरक है। राष्ट्र कवि 'रामधारी सिंह दिनकर' के शब्दों में देखे तो:-

"सच तो यह है, की जिस जिज्ञासा से धर्म की उत्पत्ति होती है, उसी जिज्ञासा में 'भक्ति' के भी बीज मौजूद रहते है।.... 'भक्ति' वह तत्व है, जो सभी धर्मों में समान रूप से पाया जाता है"। (1)

भाषावैज्ञानिक आधार पर यह सर्वमान्य है की 'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति 'भज् धातु' से हुई है। जिसका सामान्य अर्थ होता है 'भाग लेना'। 'परशुराम चतुर्वेदी' की माने तो भक्ति' शब्द का प्रथम प्रयोग 'श्वेताश्वेतर उपनिषद' में मिलता है।(2) जो की कृष्ण यजुर्वेद का अंग है और जिसका समय 7000-1500 ईसा पूर्व का माना जाता है। लेकिन आम जन में 'भक्ति' शब्द का धार्मिक क्रियाकलापों के लिए प्रयोग हमें ईसा पूर्व दूसरी सदी में दिखने लगता है। रामधारी सिंह दिनकर भी इस संदर्भ में लिखते है ' मुद्रा और शीला लेखों के आधार पर भी

यह पता चलता है की धर्म संबंधी पारिभाषिक शब्द के रूप में, 'भक्ति' का चलन ईसा पूर्व दूसरी सदी में था।' (3)

वेदों, उपनिषदों, पुरानो आदि में खोज की जाए, तो जो भावात्मक अर्थ हमें आज 'भक्ति' शब्द के साथ जुड़े जान पड़ते है, वह सभी उनमें हमें प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते है, पर 'भक्ति' शब्द नहीं। इस शब्द के स्थान पर जो शब्द हमें सामान्यतः मिलता है, वो है 'श्रद्धा' । वैदिक काल प्रकृति पूजन होने के कारण उनकी आराधना हेतु यज्ञ का बहुत ज्यादा महत्व था। यज्ञ के लिए जिन मंत्रों और स्तुतियों का प्रयोग किया जाता था, उसमें 'श्रद्धा' शब्द बार-बार आता था। इसी कारण 'डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय' भी लिखते है, की ' वैदिक स्तुतियों में दूसरा वैष्णव तत्व 'श्रद्धा' का है। वहां श्रद्धा व यज्ञ को एक माना गया है।(4) उदाहरण के लिए हम भागवत गीता की निम्नलिखित पंक्तियों को देख सकते है। जहां श्री कृष्ण अर्जुन से कहते है की श्रद्धा के बिना यज्ञ, दान या तप के रूप में जो भी किया जाता है, वह नश्वर है। वह 'असत्' कहलाता है और इस जन्म तथा अगले जन्म दोनों में ही व्यर्थ जाता है।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ (5)

इसी तरह 'उपासना', 'विश्वास', 'कृतज्ञता' आदि वे शब्द है, जिनका प्रयोग 'भक्ति' के संदर्भ में हमें वैदिक मंत्रों और उसके बाद के लिखे ग्रंथों में नजर आता है। तो हम कह सकते है की आज जो 'भक्ति' शब्द ने शाब्दिक और भावात्मक अर्थ प्राप्त किया है, वह एक लंबी विकास यात्रा का हिस्सा है। 'परशुराम चतुर्वेदी' इसी विकास यात्रा की और संकेत करते हुए कहते है:- " 'मोनियर विलियम्स के अनुसार 'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति 'भज्' से की जा सकती है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है, की 'भक्ति' भावना आर्यों के दार्शनिक एव आध्यात्मिक विचारों के फलस्वरूप क्रमशः श्रद्धा-उपासना से विक्षित होकर उपास्य भगवान के ऐश्वर्य में भाग लेना, जैसे व्यापक भाव में परिणत हुई।"(6)

हिन्दू धर्म ग्रंथों के माध्यम से अगर हम 'भक्ति' को समझने की कोशिश करे तो कोई एक भाव या कुछ शब्दों के समूह से उसे समझने की कोशिश करना न काफी होगा। क्योंकि हिन्दू धर्म में 'भक्ति' एक बड़े व्यापक स्वरूप में विद्यमान है। फिर भी हम कुछ उदाहरणों के माध्यम के 'भक्ति' के भाव बोध को समझने का प्रयास करेंगे।

- 'महामुनि शाण्डिल्य' 'भक्ति' को ईश्वर के प्रति भक्त की नित्यप्रति अनुराग के रूप में व्यक्त करते हुए कहते है:-
"सा त्वस्मिन् परानुरक्तिरीश्वरेः।" (7)

- श्रीमद्भागवत् में बताया गया है, की ऐसा मानव जिसका चित एक मात्र भगवान के संग लग गया हो, ऐसी स्वभावित वृति को 'भक्ति' कहा जाएगा।
ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति में मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढान्विद्धि नष्टान्चेतस।।
सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रह: किं करिष्यति ।। (8)

- देव ऋषि नारद 'भक्ति' को भक्त का भगवान के प्रति एकनिष्ठ प्रेम के रूप में स्थापित करते है तथा इस प्रेम को वह अमृत के समान महत्व देते हुए कहते है:-
  अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः
  सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा।
  अमृतस्वरूपा च ।।(9)

- महाप्रभु वल्लभाचार्य के अनुसार भक्त का भगवान के महात्म्य का ज्ञान पूर्वक होना व उनमें सर्वाधिक और दृढ़ स्नेह 'भक्ति' है। भगवान में पूर्ण चेतना के साथ अपूर्व प्रेम और प्रभु का गौरव बोध ही 'भक्ति' है।
  "महात्म्यज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ़ शर्वेतोऽधिकः ।
  स्नेहोभक्तिरिति प्रोक्तस्तय। मुक्ति.र्वचान्यथा ।।(10)

उपरोक्त उदाहरणों में हम देख सकते है, की भगवान के प्रति अनुराग, चित का उनमें रम जाना, उनके लिए एकनिष्ठ प्रेम और उनकी गौरवपूर्ण महात्म्य से परिचित होना आदि 'भक्ति' हो सकती है। सरल शब्दों में भक्त और भगवान के बीच का जो पारस्परिक श्रद्धा, विश्वास, प्रेम आदि भावों के समूह से जो बना संबंध स्थापित होता है, उसे 'भक्ति' कहा जा सकता है। 'योषित सुगुसवाई' भी इसी तरफ संकेत करती हुई, लिखती है :- ' in hindu religious traditions, bhakti is one of its fundamental religious commitments, the premise of which is the distinction between a devotee and god or gods. Bhakti is genrally used in a broad sense. The objects of bhakti are divine or human figures, both individually and communally.(11)
'भक्ति' को समझने के लिए हिन्दू धर्म ग्रंथों में हमें 'नवधा भक्ति' नाम से 'भक्ति' के नौ रूप या कहें नौ लक्षण हमें नजर आते है। जिनके माध्यम से 'भक्ति' के स्वरूप को समझने में सहायता ली जा सकती है। नवधा 'भक्ति' का पहला प्रयोग हमें श्रीमद्भागवात पुराण के सातवें स्कंध के पांचवे अध्याय में नजर आता है। जहां प्रहलाद ने अपने पिता हिरन्यकश्यप को 'नवधा भक्ति' का उपदेश देते हुए कहते है "श्रवणं कीर्तन विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यंमात्म निवेदनम् ।(12)इसी का थोड़ा विस्तार हमें रामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में मिलता है। जहां श्रीराम ने माता शबरी को नवधा 'भक्ति' का उपदेश देते हुए कहते है:-

- प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥
- गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान । चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान ॥
- मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा ॥
  छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा ॥
- सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा ॥
  आंठवें जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ॥
- नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिय हरष न दीना ॥

नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई ॥
अर्थात पहली 'भक्ति' है संतों का सत्संग। दूसरी 'भक्ति' है मेरे कथा-प्रसंग में प्रेम। तीसरी 'भक्ति' है अभिमानरहित होकर गुरुके चरणकमलों की सेवा और चौथी 'भक्ति' यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुणसमूहों का गान करे । मेरे (राम) मन्त्र का जाप और मुझमें दृढ़ विश्वास- यह पाँचवीं 'भक्ति' है, जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी 'भक्ति' है इन्द्रियों का निग्रह, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र), बहुत कार्यों से वैराग्य और निरंतर संत पुरुषों के धर्म (आचरण) में लगे रहना ॥ सातवीं 'भक्ति' है जगत्भर को समभाव से मुझमें ओतप्रोत (राममय) देखना और संतों को मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवीं 'भक्ति' है जो कुछ मिल जाय, उसी में संतोष करना और स्वप्न में भी पराये दोषों को न देखना। नवीं है भक्ति और सबके साथ कपटरहित बर्ताव करना, हृदयमें मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना। (13)

भक्त प्रह्लाद और भगवान राम के उपदेशों के माध्यम से हम समझ सकते है की सत्संग, कीर्तन , गुरुजनों की सेवा, छल-कपट से दूर रहना, जाप, सात्विक आचरण और भगवान पर पूर्णतः विश्वास आदि लक्षण 'भक्ति' के माध्यम के रूप में सहायक हो सकते है।
जब भी 'भक्ति' के विकास यात्रा की बात की जाती है तो उसे दक्षिण से आरंभ हुए 'भक्ति' आंदोलन' के विकास के साथ जोड़ दिया जाता है। यहाँ यह समझना आवश्यक है की 'भक्ति' आंदोलन' 'भक्ति' की विकास यात्रा का एक एहम पड़ाव रहा है, पर यह समझ लेना की 'भक्ति' का जन्म ही दक्षिण में 'भक्ति' आंदोलन के साथ हुआ, यह भारी भूल है। रामधारी सिंह 'दिनकर' के शब्दों में देखे तो "भक्ति' पहले एक देश में जन्मी और वहाँ से चलकर वह अन्य देशों में पहुंची, ऐसा सोचना मिथ्या चिंतन का पर्याय है। 'भक्ति' का जन्म सभी देशों में धर्मोदय के साथ ही हुआ, यही सच है"। (14)
हिन्दू धर्म का यह धर्मोदय वैदिक युग से ही आरंभ हो गया था और आज भी उसकी निर्मल-पावन धारा अविरल बहती चली आ रही है । 'भक्ति' आंदोलन के आरंभिक विकास के संबंध में आमजन को यह तो ज्ञात है, की उसका विकास 'आलवारों और नायनरों' द्वारा हुआ पर उससे पूर्व जो 'भक्ति' की एक लंबी और महत्वपूर्ण विकास यात्रा रही है। जिसने आज की 'भक्ति' के स्वरूप की नीव रखने का कार्य किया। उनके संबंध में बात किए बिना 'भक्ति' की विकास यात्रा का अधूरा ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। स्वयं 'दिनकर' इस संबंध में कहते है:-
"वैसे, 'भक्ति' के पुट वेदों में भी हैं, किन्तु, वेदों का सारा जोर कर्मकांड पर है। जिस 'भक्ति' का व्यापक प्रचार भागवत के समय में आकर हुआ, उसके बीज, उद्भव और विकास की सारी कहानियाँ आगम-ग्रन्थों में हैं, जिनमें से अनेक को पुराण भी कहते हैं। इसी आगमिक धारा की परिणति 'भक्ति' में हुई"। (15)
इन आगम ग्रंथों को आधार बनाकर जिन समुदायों ने प्रमुख रूप से 'भक्ति' के विकास और 'भक्ति' आंदोलन की नीव रखने का कार्य किया। उनमें से प्रमुख समुदाय निम्नलिखित है:-

- सात्वत मत

इस मत को मानने वाला समुदाय 'पंचरात्र' के पूर्व मौजूद था। विद्यानों का मानना है की 'सात्वत मत' से ही 'पंचरात्र' मत का जन्म हुआ है। जिस कारण लोगों का मानना है की यह 'पंचरात्र' मत का नामान्तर ही है। जब 800 ई०पू० यज्ञीय हिंसा में पशु बलि का प्रचलन हद से अधिक बढ़ गया और उसके विरोध में बौद्ध और जैन धर्म का उद्भव होने लगा। उसी समय 'सात्वत' समुदाय ने उपासना प्रधान संप्रदाय का विकास किया। मूलतः ये शूरसेन मण्डल में निवास करने वाले 'वृष्णिवंशीय क्षत्रिय' और 'यादववंशी क्षत्रिय' लोग थे। जिन्होंने काफी बढ़-चढ़ कर अपने संप्रदाय का विकास किया। हालांकि जब राजनीतिक कारणों से उन्हे दक्षिण की तरफ खदेड़ दिया गया, तब भी यह लोग उसके प्रचार-प्रसार में लगे रहे। इस संदर्भ में 'आचार्य बलदेव उपाध्याय' लिखते है :-

" चूंकि इन्होंने वेदों का विरोध नहीं किया अतः ये जैन एवं बौद्ध धर्म की भाँति प्रसिद्ध नहीं हो पाए। इतिहासकारों के अनुसार मगध के जरासंध के नेतृत्य में प्राच्य नरेशों ने सात्वतो के ऊपर विशाल आक्रमण किया तथा अपनी रक्षा हेतु सात्वत लोग शूरसेन को छोड़कर भारत के पश्चिमी व दक्षिणी समुद्री तट पर बस गये तथा विदर्भ, मैसूरादि सूदुर देशों को अपना उपनिवेश बनाते रहे। वस्तुतः द्रविड देश में पांचरात्र सम्प्रदाय के प्रचार का कारण सात्वत का आगमन ही था"।(16)

'आचार्य बलदेव उपाध्याय' के उपरोक्त मत से हमें दो बाते स्पष्ट होती है। पहली यह की सात्वत मत का समय 'महाभारत' का समय रहा होगा। दूसरी बात यह की सात्वतों के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप पांचरात्र मत की उत्पत्ति हुई जो पहले उत्तर भारत में हुई, विशेषतः ब्रज मण्डल में तथा बाद में उसका प्रचार प्रसार दक्षिण भारत के सुदूर दक्षिण प्रान्त द्रविड देश में हुआ।

- पंचरात्र मत

यह सात्वत का ही विकसित रूप माना जाता है। सात्वतो की ही तरह इन्होंने पशु हत्या जैसे अधार्मिक कृत्यों का विरोध किया तथा व्यावहारिक समता को जीवन में उतारते हुए एक उच्च आदर्श समाज पर बल दिया। 8वीं शताब्दी तक किसी-न-किसी रूप प्रचलित रहकर इसका रामानुज के समय में पुनः अभ्युदय हुआ, पर यह इससे आगे नहीं बढ़ सका। इस मत के प्रचारको में 'देवर्षि नारद', 'ऋषि भारद्वाज' और 'ऋषि कौशिक' माने जाते है। इससे इस मत की प्राचीनता का अंदाजा लगाया जा सकता है।

इस मत में संहिताओ में मौजूद ज्ञान, योग, क्रिया तथा चर्या का वर्णन मिलता है। 'क्रिया' में मन्दिरों का निर्माण, मूर्ति स्थापना की विधि वर्णित है, 'चर्या' में पूजा-विधि बतलाई गई है। इसी का वर्णन सबसे अधिक है। ज्ञान व योग का वर्णन कम है। अतः हम कह सकते है की यह मत क्रिया प्रधान मत है। इसी तरफ 'डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय' भी इशारा करते हुए लिखते है:-

" 'भक्ति' के विकास में पाँचरात्रमत, गीता के बाद द्वितीय प्रकाशस्तम्भ है, जिसमें योग व साख्य का गीता की तरह ही समन्वय कर लिया गया है। 'भक्ति' को प्रमुखता दी गई है..... मन्दिर निर्माण, मूर्ति-पूजा, पूजा-पद्धति, बैकुण्ठ-कल्पना का बराबर विकास होता रहा है।.....इस प्रकार आड़वार भक्तों के पूर्व ही इन 'भक्ति' मतों का प्रचार

हो गया था। अतः आगे के विकास के लिए पंचरात्रमत पुष्ट धरातल का काम कर रहा है था। इस प्रकार वैष्णवधर्म का विकास हुआ"। (17)

- वैखानस मत

वैखानस एक प्रमुख प्राचीन भारतीय सम्प्रदाय है। इसके अनुयायी विष्णु एवं उनके अवतारों की पूजा करते हैं। वे प्रायः कृष्ण यजुर्वेद की तैतरीय शाखा तथा वैखानस कल्पसूत्र के अनुयायी ब्राह्मण हैं। इस पंथ की आचार्य परंपरा विखनस मुनि से आरंभ होती है। 'वैखानस' शब्द 'विखनस' से बना है। यही 'वैखानस भागवत् शास्त्र' तिरुमल वेंकटेश्वर मंदिर के कर्मकाण्ड का मुख्य आधार है। मन्दिर के विभिन्न अन्नों का निर्माण, मूर्तियों की विशेषता, अर्चना, बलि आदि आचरणों का इस मत में बाहुल्य है।

इस मत की चार शाखाएँ मानी जाती है जिन्हें आत्रेय, काश्यपीय, मारीच एवं भार्गव कहा गया है और इनकी केवल संहिताएँ मात्र ही भिन्न हैं। वैष्णववाद की वैखानस शाखा अपने आयात में एकेश्वरवादी है। इसका ध्यान मूर्ति पूजन के रूप में विष्णु के प्रति अखंड 'भक्ति' पर है, जिसमें घरों और मंदिरों दोनों में पूजा के अनुष्ठानिक पहलुओं पर अत्यधिक जोर दिया गया है। वैखानस साहित्य काफी व्यापक है। अधिकांश ग्रंथ अपने सूक्ष्मतम विवरण में पूजा के अनुष्ठानों पर गहराई से ध्यान केंद्रित करते हैं, जिसमें दैनिक, पाक्षिक, मासिक और वार्षिक त्योहारों या उत्सवों को शामिल किया गया है, जिसमें प्रायश्चित अनुष्ठानों, मंदिर-वास्तुकला, प्रतिमा विज्ञान, मूर्तियों की स्थापना, अभिषेक आदि पर विशेष जोर दिया गया है।

उपरोक्त विवेचना के बाद हम यह कह सकते है की 'आलवारों व नायनरों' द्वारा जिस भक्ति की अवधारणा और भक्ति आंदोलन का आरंभ किया गया, उसकी नीव 'सात्वत', 'पंचरात्र' और वैखानस जैसे ही 'भक्ति' समुदायों ने डाली थी। इस प्रकार एक मत जो यहाँ स्पष्ट होती है, वो यह की आंदोलन के रूप में जिस 'भक्ति' का विकास दक्षिण में हुआ। उसका बीज, खाद आदि सामग्री उसे उत्तर से ही प्राप्त हुई। इसके आगे हमें एक आंदोलन के रूप में 'भक्ति' के विकास की तीन लहरे दृष्टिगोचर होती है। जिसके संबंध में 'रामधारी सिंह दिनकर' लिखते है:-

"बांत चाहे जो हो, किन्तु, इतना स्पष्ट दीखता है कि 'भक्ति' की धारा गीता में फूटती है, दक्षिण के आलवार-सन्तों के पदों में वह अपनी पहली राह बनाती है, रामानुज एवं अन्य आचार्यों की पद्धतियों में उसे विस्तार प्राप्त होता है एवं बाद के कवियों और सन्तों को पाकर वह सारे देश को प्लावित कर देती है। इस्लाम का प्रभाव रामानुज के बाद के सन्तों और कवियों में मिले तो मिले, रामानुज के काल तक तो वह नहीं ही मिल सकता है। "(18)

में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे।

निष्कर्ष:- उपरोक्त विवेचना के पश्चात हम कह सकते है, की 'भक्ति' एक व्यापक भाव-बोध है। जो अपने भीतर विभिन्न मार्गों, जिससे एक भक्त भगवान को प्राप्त कर सकता है समाहित है। इसके साथ हम यह भी कह सकते है की दक्षिण में भक्ति आंदोलन शुरू होने से पूर्व भी भक्ति का विकास कई समुदायों के माध्यम से चल रहा था और छोटे-छोटे क्षेत्रीय पंथ भक्ति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे।

- संदर्भ सूची:-

1) दिनकर रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय,लोकभारती प्रकाशन,प्रयागराज -211001,वर्ष-2021,पृष्ठ संख्या -270-271।
2) नागेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स, दरियागंज 110002,वर्ष -2023, पृष्ठ संख्या -82।
3) दिनकर रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय,लोकभारती प्रकाशन,प्रयागराज -211001,वर्ष-2021,पृष्ठ संख्या -271।
4) उपाध्याय मंजुल,हिंदी साहित्य की दार्शनिक पृष्टभूमि,रचना प्रकाशन, जयपुर -302001, वर्ष -2015, पृष्ठ संख्या -113।
5) स्वामी प्रभुपाद, भक्ति वेदांत बुक ट्रस्ट, जुहू मुंबई, वर्ष - 2015, पृष्ट संख्या -519 ।
6) नागेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स, दरियागंज 110002,वर्ष -2023, पृष्ट संख्या -82।
7) Sri sandilya bhakti sutras, Sri nityanand brahmachari gitikovid sree gudiya math, madras-600014, page-4।
8) श्रीमद भागवत, गीताप्रेस गोरखपुर, तृतीय स्कंध,अध्याय 25, श्लोक 32,33, पृष्ट संख्या -135।
9) नारद भक्ति सूत्र, ,गीताप्रेस गोरखपुर,श्लोक संख्या-1,2,3, पृष्ठ-4।
10) उपाध्याय मंजुल,हिंदी साहित्य की दार्शनिक पृष्टभूमि,रचना प्रकाशन, जयपुर -302001, वर्ष -2015, पृष्ठ संख्या -121।
11) IWAO SHIMA,TEIJI SAKATA,KATSUYUKI IDA, The Historical Development of the Bhakti Movement in India Theory and Practice, manohar publication and distributors, daryaganj -110002, year -2011, page no- 25।
12) श्रीमद भागवत, गीताप्रेस गोरखपुर, सप्तम स्कंध,अध्याय 5, श्लोक 22 ,23, पृष्ट संख्या -346।
13) पोद्दार हनुमानप्रसाद, रामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर, वर्ष - 1999, पृष्ट संख्या - 611 - 612।
14) दिनकर रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय,लोकभारती प्रकाशन,प्रयागराज -211001,वर्ष-2021,पृष्ठ संख्या-270-271।
15)) दिनकर रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय,लोकभारती प्रकाशन,प्रयागराज -211001,वर्ष-2021,पृष्ठ संख्या -274।
16) उपाध्याय बलदेव, वैष्णव संप्रदायों का साहित्य और सिद्धांत, चौखंभ प्रकाशन वाराणसी, वर्ष- 2002, पृष्ठ संख्या- 70।
17) उपाध्याय मंजुल,हिंदी साहित्य की दार्शनिक पृष्टभूमि,रचना प्रकाशन, जयपुर -302001, वर्ष -2015, पृष्ठ संख्या -120।
18) दिनकर रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय,लोकभारती प्रकाशन,प्रयागराज -211001,वर्ष-2021,पृष्ठ संख्या-281।